IJPSR Vol. 2 Issue 2 April-June (2026) 130–138

eISSN: 3139-342X

International Journal of Primary and Secondary Research

International, Double-Blind, Quarterly, Peer-Reviewed, Refereed, Edited and Open Access Research Journal
Journal homepage: ijpsr.co.in

मौर्यकाल में राज्य की परिकल्पना में वर्ण-व्यवस्था का योगदान : एक ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक अध्ययन

सोनी कुमारी[1] एवं डा० आशुतोष कुमार[1]

[1] *इतिहास विभाग, बी० एन० एम० कॉलेज, बड़हिया, टी० एम० बी० यू० भागलपुर*

*Corresponding author. E-mail address: drsoniyadav5@gmail.com

DOI- https://doi.org/10.59436/ijpsr.v2i2.hin10.3139-342X

ARTICLE INFO

Article history:
Received 18 April2026
Received in revised form
10 May 2026
Accepted 14 June 2026
Available online 26 June 2026

Keywords:
मौर्य साम्राज्य, राज्य की परिकल्पना, वर्ण-व्यवस्था, अर्थशास्त्र, कौटिल्य, अशोक, धम्म, सामाजिक संगठन, राजसत्ता, प्राचीन भारत

ABSTRACT

मौर्य साम्राज्य प्राचीन भारतीय इतिहास में राज्य.निर्माणए प्रशासनिक केंद्रीकरणए आर्थिक संगठन और सामाजिक संरचना के विकास की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण चरण का प्रतिनिधित्व करता है। सामान्यतः मौर्यकालीन राज्य की चर्चा चन्द्रगुप्त मौर्यए कौटिल्य के अर्थशास्त्रए अशोक की धम्म.नीतिए विशाल नौकरशाहीए कर.व्यवस्था और सैन्य संगठन के संदर्भ में की जाती हैय किंतु राज्य की वैचारिक तथा सामाजिक आधारभूमि के रूप में वर्ण.व्यवस्था की भूमिका पर अपेक्षाकृत कम समेकित ध्यान दिया गया है। प्रस्तुत शोध.पत्र का उद्देश्य मौर्यकालीन राज्य की परिकल्पना और उसके संस्थागत स्वरूप में वर्ण.व्यवस्था के योगदान का ऐतिहासिक.विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। इस अध्ययन का केंद्रीय तर्क यह है कि मौर्यकाल में वर्ण-व्यवस्था को केवल एक धार्मिक-सामाजिक वर्गीकरण के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। यह सामाजिक कर्तव्यों, पेशागत विभाजन, राजकीय वैधता, न्यायिक व्यवहार, पारिवारिक संबंधों, राजकीय संरक्षण तथा आर्थिक उत्पादन के संगठन से जुड़ी एक व्यापक वैचारिक संरचना थी। अर्थशास्त्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए निर्धारित कर्तव्यों का वर्णन राज्य के आर्थिक, सैन्य, धार्मिक और प्रशासनिक कार्यों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ता है। ब्राह्मणों को ज्ञान, यज्ञ और वैधानिक-धार्मिक प्रतिष्ठा से; क्षत्रियों को शासन, युद्ध और संरक्षण से; वैश्यों को कृषि, पशुपालन और व्यापार से तथा शूद्रों को सेवा, कृषि, पशुपालन, व्यापार और शिल्प से जोड़ना राज्य की कार्यात्मक संरचना के लिए एक सामाजिक आधार प्रदान करता था। हालाँकि, यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा कि मौर्य साम्राज्य पूरी तरह वर्ण-व्यवस्था द्वारा संचालित राज्य था। मेगस्थनीज द्वारा वर्णित सात सामाजिक समूहों का वर्गीकरण चार वर्णों से भिन्न है और यह संकेत करता है कि वास्तविक सामाजिक जीवन को केवल ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य–शूद्र के आदर्श मॉडल में समाहित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार अशोक के अभिलेखों में राज्य की नैतिकता का आधार केवल वर्णधर्म न होकर 'धम्म' है, जिसमें माता-पिता की सेवा, प्राणियों के प्रति दया, ब्राह्मणों और श्रमणों के प्रति सम्मान, संयम तथा धार्मिक सहिष्णुता पर बल दिया गया है। अतः मौर्य राज्य को समझने के लिए ब्राह्मणीय वर्ण-आदर्श, राजकीय व्यवहार, आर्थिक परिवर्तन और श्रमण परंपराओं के बीच अंतःक्रिया को समझना आवश्यक है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि वर्ण-व्यवस्था ने मौर्य राज्य की परिकल्पना को तीन प्रमुख स्तरों पर प्रभावित किया—पहला, सामाजिक भूमिकाओं और कर्तव्यों का वैचारिक निर्धारण; दूसरा, शासन और न्याय के लिए सामाजिक श्रेणियों का संस्थागत उपयोग; और तीसरा, कृषि, व्यापार, शिल्प तथा राजस्व-संग्रह के लिए श्रम और उत्पादन का सामाजिक संगठन। इसके साथ ही मौर्य राज्य की व्यापकता ने स्वयं वर्ण-आदर्श को चुनौती भी दी, क्योंकि साम्राज्य में अनेक जनजातीय, क्षेत्रीय, पेशागत और धार्मिक समुदाय सम्मिलित थे। इसलिए मौर्यकालीन राज्य को वर्ण-आधारित राज्य कहने की अपेक्षा ऐसा राज्य कहना अधिक उपयुक्त है जिसने प्रचलित सामाजिक श्रेणियों और वर्ण-वैचारिकी का उपयोग करते हुए एक व्यापक, बहुस्तरीय और केंद्रीकृत राजसत्ता निर्मित की।

प्रस्तावना

प्राचीनतम भारतीय स्रोतो मे हमे प्रारंभिक समाज के निर्माण मे वर्ण-व्यवस्था और उससे उत्पन्न सामाजिक संगठनो से विभिन्न नीतिगत तथ्यो का फलीभूत होकर राजनीतिक संघटन अथवा संस्था निर्माण दृष्टिगोचर होते हैं । वर्ण-धर्म-आश्रम-समाज-अर्थ व्यवस्था और विकासशील व्यवस्था से ही किसी संस्था का प्रस्पफुटन होता है, राज्य की परिकल्पना में ये सभी और शेष तत्व भी आवश्यक हैं । यद्यपि राज्य और समाज इस दृष्टिकोण से पूरक हैं फिर भी ये दोनों भिन्न हैं, विशेषकर शासन संदर्भ में । किन्तु जिस बिन्दु पर राज्य के प्रति चेतना का जन्म होता है और उसके कार्यों को मान्यता मिलती है, वही वह बिन्दु है जहाँ शासन और समाज के स्वरूप मे भी परिवर्तन होता है । समाज राज्य के तंत्रा का पालन-पोषण करता है और शासन राज्य की अभिव्यक्ति हो जाता है । समाजशास्त्राी विचारको विशेषक प्रो रोमिला थापर की वंश प्रणाली का वर्ण-व्यवस्था से सामंजस्य कराने का एक प्रयास इस शोध की विशिष्ट प्रकृति है । चूकि वर्ण से ही वंश तक की दूरी तय

This is an Open Access article published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0)

की गयी है, वंश का विकास संभव हो पाया है । परिवार, सगोत्राता, विवाह और वंश प्रणाली से राज्य की स्थापना एक प्रकार के समाज की ओर इशारा करती है । राज्य किसी क्षेत्रा की सीमा मे किसी राजनीतिक प्राधिकरण के कार्यरत होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है । इस बात का सबूत देता है कि उक्त प्राधिकरण अनेक अधिकार दूसरे कार्यकर्त्ताओ को प्रतिनियोजित करता है । राज्य की आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति उस आय से होती है जो निर्वै यक्तिक आधार पर लोग उसके अनुशरण के लिए बराबर देते रहते है (धम्मिका, एस. 1993)।

भारतीय इतिहास में मौर्य साम्राज्य का उदय केवल एक राजवंश के राजनीतिक उत्कर्ष की घटना नहीं था। यह उस दीर्घकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम था जिसमें महाजनपदों का विकास, कृषि का विस्तार, नगरीकरण, व्यापारिक गतिविधियों की वृद्धि, लौह-प्रौद्योगिकी का प्रसार, नए सामाजिक समूहों का उद्भव और विभिन्न धार्मिक-दार्शनिक परंपराओं का विकास एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। छठी से चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य गंगा की मध्य घाटी में विकसित राजनीतिक संरचनाओं ने ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित कीं जिनमें एक विशाल साम्राज्य के गठन की संभावना पैदा हुई। मौर्यों ने इसी ऐतिहासिक परिस्थिति में एक व्यापक राजनीतिक सत्ता स्थापित की। मौर्य राज्य की प्रकृति पर इतिहासलेखन में विभिन्न मत रहे हैं। एक दृष्टिकोण इसे अत्यधिक केंद्रीकृत और नौकरशाही राज्य के रूप में देखता है, जबकि दूसरा दृष्टिकोण स्थानीय शक्तियों, क्षेत्रीय विविधताओं और सीमित प्रशासनिक एकीकरण पर बल देता है। अर्थशास्त्र राज्य के एक अत्यंत व्यवस्थित आदर्श का चित्र प्रस्तुत करता है, जिसमें राजा, मंत्रिपरिषद, विभागाध्यक्ष, दुर्ग, सेना, कर-संग्रह, जासूसी, न्याय और आर्थिक नियंत्रण का विस्तृत विवेचन मिलता है। दूसरी ओर अशोक के अभिलेख एक ऐसे सम्राट की राजनीतिक दृष्टि सामने रखते हैं जो विजय के बाद 'धम्म' को साम्राज्य की नैतिक एकता का आधार बनाता है। इस संदर्भ में सामाजिक व्यवस्था का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है (अक्तोर, एम. 2017)।

राज्य और समाज के बीच संबंध को समझे बिना राज्य की प्रकृति को पूर्णतः समझा नहीं जा सकता। प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में समाज को पूरी तरह राज्य से पृथक संस्था के रूप में नहीं देखा गया। 'धर्म', 'वर्ण', 'आश्रम', 'राजधर्म' और 'दण्ड' जैसी अवधारणाएँ सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को परस्पर जोड़ती थीं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजा का एक महत्वपूर्ण दायित्व प्रजा की रक्षा और सामाजिक व्यवस्था का संरक्षण है। इस व्यवस्था में वर्णों के निर्धारित कर्तव्यों का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। अर्थशास्त्र में ब्राह्मण के लिए अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ, याजन तथा दान-प्रतिग्रहण; क्षत्रिय के लिए अध्ययन, यज्ञ, दान, शस्त्र-व्यवसाय तथा प्रजा-रक्षण; वैश्य के लिए कृषि, पशुपालन और व्यापार तथा शूद्र के लिए सेवा के साथ कृषि, पशुपालन, व्यापार और शिल्प जैसी गतिविधियों का उल्लेख मिलता है। यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है—क्या वर्ण-व्यवस्था ने केवल समाज को वर्गीकृत किया या उसने राज्य की संस्थाओं को भी प्रभावित किया? क्या मौर्य राज्य की राजनीतिक वैधता और प्रशासनिक संरचना को वर्ण-आदर्श से समर्थन मिला? क्या राज्य ने वर्णीय सामाजिक व्यवस्था को सक्रिय रूप से लागू किया अथवा उसने उसे व्यापक राजनीतिक व्यवस्था के एक घटक के रूप में स्वीकार किया? और क्या अशोक की धम्म-नीति ने इस संबंध में कोई परिवर्तन उत्पन्न किया?

इन प्रश्नों का उत्तर सरल नहीं है। मौर्यकालीन समाज को चार कठोर, परस्पर पृथक और जन्म-आधारित समूहों में बाँट देना ऐतिहासिक वास्तविकता को अत्यधिक सरल बना देगा। मेगस्थनीज के इंडिका के उपलब्ध अंशों में भारतीय समाज का सात समूहों के रूप में वर्णन मिलता है दार्शनिक, कृषक, पशुपालक/शिकारी, शिल्पी एवं व्यापारी, सैनिक, निरीक्षक तथा परिषद् और अधिकारी। यह वर्गीकरण भारतीय वर्ण-व्यवस्था से पूर्णतः मेल नहीं खाता। इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक वास्तविकता पेशागत और प्रशासनिक भूमिकाओं के आधार पर भी संगठित थी। इसी प्रकार अशोक के अभिलेखों में 'ब्राह्मण' और 'श्रमण' का उल्लेख मिलता है, किंतु अशोक की धम्म-नीति का लक्ष्य चार वर्णों को कठोरता से विन्यस्त करना नहीं था। उसके अभिलेख नैतिक आचरण, प्राणियों के प्रति दया, माता-पिता की सेवा, धार्मिक सहिष्णुता और प्रशासनिक उत्तरदायित्व पर बल देते हैं। अशोक के अभिलेखों को इसलिए मौर्य राज्य के वैकल्पिक वैचारिक आयाम के रूप में देखना आवश्यक है। Edicts of Asoka पर आधुनिक अध्ययन भी धम्म को राज्य की नैतिक-प्रशासनिक परियोजना से जोड़ते हैं। इस शोध का मुख्य उद्देश्य इसी जटिलता को समझना है। इसका तर्क यह है कि वर्ण-व्यवस्था मौर्य राज्य की एकमात्र आधारभूत संरचना नहीं थी, परंतु उसने राज्य की सामाजिक कल्पना, कर्तव्य-निर्धारण, राजधर्म, न्याय, आर्थिक भूमिकाओं और सामाजिक वैधता को महत्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान किया।

शोध की समस्या, शोध-पद्धति, उद्देश्य और स्रोत

प्रस्तुत शोध की मूल समस्या यह है कि मौर्यकालीन राज्य और वर्ण-व्यवस्था के संबंध को अक्सर दो अतियों में समझा जाता है। पहली अति मौर्य राज्य को पूरी तरह वर्ण-व्यवस्था पर आधारित मानती है; दूसरी अति राज्य की प्रशासनिक और आर्थिक संरचना को सामाजिक श्रेणियों से लगभग स्वतंत्र मानती है। दोनों दृष्टिकोण ऐतिहासिक जटिलता को पर्याप्त रूप से नहीं पकड़ते।

यह अध्ययन मुख्यतः ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। इसमें प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है।

(क) कौटिल्य का अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र मौर्यकालीन राजनीतिक चिंतन के अध्ययन का प्रमुख स्रोत है। इसमें राज्य के सप्तांग सिद्धांत, राजा के कर्तव्य, दण्डनीति, प्रशासन, राजस्व, कृषि, व्यापार, सेना, न्याय और सामाजिक व्यवस्था से संबंधित विस्तृत सामग्री उपलब्ध है। पाठ की तिथि और उसके विभिन्न स्तरों को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं; इसलिए इसे सीधे चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन का प्रशासनिक मैनुअल मानना सावधानी की माँग करता है। फिर भी यह मौर्यकालीन तथा उत्तर-मौर्यकालीन राजनीतिक विचार की परंपरा को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है (कौटिल्य, 1960–1965)।

(ख) अशोक के अभिलेख

अशोक के शिलालेख और स्तंभलेख मौर्यकालीन राज्य के सबसे

This is an Open Access article published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0)

प्रत्यक्ष स्रोतों में हैं। इनमें राजा की राजनीतिक भाषा, धम्म, प्रशासनिक दायित्व, प्रजा के कल्याण, धार्मिक सहिष्णुता और दण्ड के संबंध में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। अशोक के प्रमुख शिलालेखों में धम्म को राजकीय नैतिकता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अशोक के अभिलेखों की विभिन्न भाषायी और क्षेत्रीय परंपराएँ भी साम्राज्य की बहुलता को दर्शाती हैं (अशोक (ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी)।

(ग) मेगस्थनीज का इंडिका

मेगस्थनीज चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार से संबंधित यूनानी राजदूत था। उसकी मूल रचना उपलब्ध नहीं है; उसके अंश बाद के लेखकों के उद्धरणों से पुनर्निर्मित होते हैं। इसलिए उसकी सूचनाओं का आलोचनात्मक उपयोग आवश्यक है। फिर भी पाटलिपुत्र, कृषि, सेना, प्रशासन और सामाजिक समूहों के बारे में उसका विवरण महत्त्वपूर्ण है (मेगस्थनीज (प्राचीन काल)।

वर्ण और जाति: ऐतिहासिक अंतर

मौर्यकाल के अध्ययन में सबसे सामान्य समस्याओं में से एक है 'वर्ण' को आधुनिक अर्थ में 'जाति' मान लेना। आधुनिक भारतीय जाति-व्यवस्था की जटिलता को सीधे मौर्यकाल पर आरोपित करना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं है। धर्मशास्त्रीय परंपरा में वर्ण एक आदर्श सामाजिक वर्गीकरण था। आधुनिक विद्वान यह भी रेखांकित करते हैं कि धर्मशास्त्रों में वर्ण-संरचना आदर्शात्मक थी और वास्तविक सामाजिक जीवन में इसके अनुप्रयोग की सीमा भिन्न-भिन्न रही। मौर्यकालीन राज्य में स्थानीय समुदाय, जनजातीय समूह, पेशागत संगठन, व्यापारी, शिल्पी और विभिन्न धार्मिक समूह मौजूद थे। इनमें से सभी को चार वर्णों में स्पष्ट रूप से समाहित करना संभव नहीं था। इसलिए शोध की दृष्टि से यह कहना अधिक उचित होगा कि वर्ण-व्यवस्था ने सामाजिक पदानुक्रम और कर्तव्य का एक 'मानक मॉडल' प्रदान किया, जबकि वास्तविक समाज ने अनेक स्थानीय और पेशागत संरचनाओं को बनाए रखा (धम्मिका, एस. 1993)।

मौर्यकालीन राज्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वैदिकोत्तर काल कबीले अथवा कुल के सदस्यों की शक्ति क्षीण हो गई तथा अंततः समाप्त हो गई, वे अपना हिस्सा पाने, लड़ने, राजा या सरदार का चुनाव करने, सभा, समिति, विदथ, गण तथा परिषद् जैसी सभाओं मे बैठने के अधिकारी नहीं रहे इन्हीं परिस्थितियों के कारण राज्य प्रणाली का जन्म हुआ । प्रभुता, परंपरा तथा अनुभव के बल पर कतिपय परिवारो ने कर वसूलने, लड़ने तथा कानून और व्यवस्था बनाए रखने का अधिकार हथिया लिया । इन्हें समर्थन मिला उन परिवारो से जिन्होंने धार्मिक देन-लेन तथा अपने यजमानो को अनुष्ठान करने का एकाधिकार हस्तगत कर लिया था । यह कहना कठिन है कि ये दोनो प्रकार के लोग एक ही कुल या कबीले के सदस्य थे । ऐसा माना जाता है कि ब्राह्मण समुदाय मे अवैदिक तत्व सम्मिलित हो गये थे । जो भी हो, ये दो श्रेणियाँ राज्य के नेताओं के रूप में सामने आई । सरदारो जिन्हें राजन्य अथवा क्षत्रिय कहा जाता था, तथा पुरोहितों की, जिन्हे ब्राह्मण कहा जाता था, सत्ता के उदय ने कबीलाई सत्ता को कमजोर किया और परिपूर्ण राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया ।

मौर्य राज्य को समझने के लिए उससे पहले के महाजनपद युग को समझना आवश्यक है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक उत्तर भारत में अनेक शक्तिशाली राज्य विकसित हो चुके थे। मगध का विस्तार विशेष रूप से उल्लेखनीय था। उपजाऊ भूमि, लोहे के संसाधनों तक पहुँच, हाथियों की उपलब्धता, नदी-मार्गों तथा व्यापारिक मार्गों पर नियंत्रण और राजनीतिक संगठन ने मगध को अन्य महाजनपदों की तुलना में अधिक शक्तिशाली बनाया। मौर्यों ने इसी पूर्ववर्ती राजनीतिक आधार का विस्तार किया। चन्द्रगुप्त मौर्य ने नंद सत्ता को हटाकर एक नई साम्राज्यवादी संरचना स्थापित की। उसके पश्चात बिन्दुसार और अशोक ने साम्राज्य का विस्तार और सुदृढ़ीकरण किया। इस प्रकार मौर्य राज्य केवल सैन्य विजय का परिणाम नहीं था; वह कृषि उत्पादन, कर-संग्रह, नगरीकरण, व्यापार, प्रशासन और सामाजिक संगठन की संयुक्त प्रक्रिया का परिणाम था। रोमिला थापर के अनुसार मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था और सामाजिक संगठन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। कृषि विस्तार, शिल्पों के विकास और व्यापार की वृद्धि ने सामाजिक संबंधों को प्रभावित किया और साम्राज्य की राजनीतिक संरचना के लिए नई आर्थिक संभावनाएँ पैदा कीं। यहीं वर्ण-व्यवस्था का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है। राज्य के लिए केवल क्षेत्र पर अधिकार पर्याप्त नहीं था; उसे विभिन्न सामाजिक समूहों को उत्पादन, कर, सैन्य सेवा, प्रशासन और धार्मिक वैधता की एक व्यापक व्यवस्था में जोड़ना था। वर्ण-आदर्श इस एकीकरण के लिए उपलब्ध वैचारिक संसाधनों में से एक था (बाशम, ए. एल. 1954)।

वर्ण-व्यवस्था की अवधारणा और मौर्यकालीन संदर्भ

'वर्ण' और 'जाति' को समानार्थी मानना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं है। वर्ण एक वैचारिक और शास्त्रीय वर्गीकरण था, जबकि जाति या जति स्थानीय, पेशागत, वंशीय और सामाजिक समुदायों की अधिक जटिल संरचना को दर्शाती थी। प्राचीन भारतीय समाज की वास्तविक संरचना चार वर्णों से कहीं अधिक जटिल थी। धर्मशास्त्रीय परंपरा में चार प्रमुख वर्णों का उल्लेख मिलता है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनकी सामाजिक भूमिकाएँ क्रमशः धार्मिक-वैचारिक कार्य, शासन एवं युद्ध, उत्पादन-वाणिज्य और सेवा/उत्पादक श्रम से जोड़ी गईं। आधुनिक शोध यह भी रेखांकित करता है कि धर्मशास्त्रीय वर्ण-व्यवस्था एक आदर्शात्मक सामाजिक मॉडल थी, जिसे वास्तविक समाज में समान रूप से लागू हुआ मानना उचित नहीं है। मौर्यकाल में यह आदर्श कई नई ऐतिहासिक परिस्थितियों से प्रभावित था। एक ओर ब्राह्मणीय सामाजिक व्यवस्था की वैचारिक प्रतिष्ठा बनी हुई थी; दूसरी ओर बौद्ध, जैन और आजीवक जैसी श्रमण परंपराएँ भी शक्तिशाली थीं। साम्राज्य के विस्तार से अनेक ऐसे समुदाय राजकीय संरचना में सम्मिलित हुए जिन्हें चार वर्णों की शास्त्रीय व्यवस्था में सीधे रखना कठिन था। इसलिए मौर्यकालीन वर्ण-व्यवस्था को 'स्थिर चार-स्तरीय जाति व्यवस्था' के रूप में देखना उचित नहीं है। अधिक उपयुक्त दृष्टिकोण यह होगा कि इसे सामाजिक भूमिकाओं, धार्मिक प्रतिष्ठा, आर्थिक कार्य और राजनीतिक वैधता को व्यवस्थित करने वाले एक प्रभावशाली वैचारिक ढाँचे के रूप में देखा जाए (झा, डी. एन. 1998)।

अर्थशास्त्र और वर्ण-व्यवस्था

पुरोहितों ;ब्राह्मणोंद्ध तथा क्षत्रियो की भूमि तथा पशुओके स्वामित्व

This is an Open Access article published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0)

से उतना लाभ नहीं था जितना कि पदो पर एकाधिकार तथा करो से मुक्त होने से था । मुख्य भार कृषक वर्ग ;वैश्य अथवा गृहपतियों परद्ध पड़ता था जो कमोवेश पुरानी जनजातियों के वंशज थे और अब कृषि कार्य करते थे । स्पष्टतः, प्रत्येक कृषक परिवार के कब्जे में कुछ जमीन होती थी, भले ही उस पर कुल अथवा जनजाति के अधिकार का स्वरूप जो भी रहा हो । किन्तु गृहपतियो को जिनमे से कुछ दास रखते थे तथा अपनी भूमि पर कृषि के लिए कर्मकर ;मजदूरद्ध रखते थे और व्यापार करते थें। अर्थशास्त्र में वर्णों के कर्तव्यों का वर्णन अत्यंत स्पष्ट है। ब्राह्मणों के लिए अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ और दान से संबंधित कार्य निर्धारित किए गए हैं। क्षत्रिय का कार्य सैन्य सेवा और प्रजा की रक्षा से जुड़ा है। वैश्य कृषि, पशुपालन और व्यापार करते हैं। शूद्र के लिए सेवा के साथ कृषि, पशुपालन, व्यापार तथा शिल्प का उल्लेख मिलता है। यह वर्गीकरण राज्य के लिए महत्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि यह सामाजिक भूमिका और आर्थिक भूमिका के बीच संबंध स्थापित करता है। राज्य की स्थिरता के लिए तीन प्रमुख आवश्यकताएँ थीं—उत्पादन, सुरक्षा और वैधानिकता। वर्ण-आदर्श इन तीनों को अलग-अलग सामाजिक समूहों से जोड़ता है। ब्राह्मणों की भूमिका केवल धार्मिक कर्मकांड तक सीमित नहीं थी। ज्ञान, शिक्षा और वैधानिक परंपरा से उनका संबंध राजा की वैधता के लिए उपयोगी था। राजसत्ता को धर्म, सामाजिक मानदंड और शास्त्रीय परंपरा के साथ जोड़ने में ब्राह्मणीय विचार महत्त्वपूर्ण था। क्षत्रिय आदर्श राज्य की सैन्य और राजनीतिक शक्ति से सीधे जुड़ा था। राजा की शक्ति, युद्ध, दण्ड और प्रजा-रक्षण की अवधारणाएँ क्षत्रिय धर्म के साथ संबंध रखती थीं। अर्थशास्त्र का राजा केवल धार्मिक आदर्शों का संरक्षक नहीं था; वह सक्रिय प्रशासक, सैन्य नेता और आर्थिक नियामक भी था। वैश्य वर्ग के संदर्भ में कृषि, पशुपालन और व्यापार का उल्लेख विशेष महत्व रखता है। मौर्य राज्य की राजस्व-व्यवस्था भूमि और उत्पादन पर निर्भर थी। अतः उत्पादक वर्गों का स्थायित्व राज्य की आर्थिक शक्ति का आधार था। शूद्रों के संदर्भ में अर्थशास्त्र का विवरण यह संकेत देता है कि उन्हें केवल 'सेवक' समझना पर्याप्त नहीं है। कृषि, पशुपालन, व्यापार और शिल्प में उनकी भागीदारी का उल्लेख वास्तविक आर्थिक जीवन की जटिलता को दर्शाता है। इससे यह निष्कर्ष भी निकलता है कि शास्त्रीय वर्णीय श्रेणियाँ और वास्तविक पेशागत संरचना एक-दूसरे से पूरी तरह समान नहीं थीं (कांगले, आर. पी. 1960–1965)।

वर्ण-व्यवस्था, राज्य की वैधता और प्रशासन

बु(कालीन समाज, वर्ण एवं राज्य संदर्भित अध्ययन मे तत्कालीन वर्ण-जाति के भेद पर दृष्टि आवश्यक है। युग में समाज में जातिभेद अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया । जाति के अनुसार ऊँच-नीच की भावना अति प्रबल हो गयी । ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनो ही अपनी श्रेष्ठता करने के लिए प्रयत्नशील थे । प्राचीन राज्य के लिए बल और प्रशासन पर्याप्त नहीं थे। उसे वैधता की भी आवश्यकता थी। राजसत्ता को यह स्थापित करना पड़ता था कि राजा का शासन सामाजिक और नैतिक व्यवस्था के अनुकूल है। भारतीय राजनीतिक परंपरा में राजा का संबंध 'धर्म' से जोड़ा गया। राज्य का दायित्व केवल कर लेना या दण्ड देना नहीं था; उसे सामाजिक व्यवस्था की रक्षा भी करनी थी। वर्ण-व्यवस्था इस वैधता के निर्माण में सहायक थी। यदि समाज में प्रत्येक वर्ग का अपना धर्म और कर्तव्य है, तो राजा का कार्य उन कर्तव्यों के पालन के लिए अनुकूल वातावरण बनाना और व्यवस्था बनाए रखना माना जा सकता था। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था के बीच वैचारिक संबंध निर्मित होता था। यहाँ 'राजधर्म' और 'वर्णधर्म' का संबंध महत्वपूर्ण है। राजा स्वयं क्षत्रिय आदर्श से जुड़ा होने के कारण रक्षा, शासन और न्याय के लिए उत्तरदायी था। ब्राह्मणीय परंपरा राजा की सत्ता को धार्मिक-सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण के साथ जोड़ती थी। इस व्यवस्था में राजा सामाजिक श्रेणियों का निर्माता मात्र नहीं था; वह उनके संरक्षण और नियंत्रण का केंद्र था। लेकिन यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अर्थशास्त्र का राज्य अत्यंत व्यावहारिक है। उसका प्रमुख लक्ष्य राज्य की सुरक्षा, समृद्धि और स्थिरता है। इसीलिए वर्ण-व्यवस्था को भी राजनीतिक अर्थव्यवस्था के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। राज्य के लिए किसी सामाजिक समूह का महत्व केवल उसके धार्मिक दर्जे से निर्धारित नहीं होता था, बल्कि उसके आर्थिक और प्रशासनिक उपयोग से भी होता था। मौर्य प्रशासन की विशालता ने विभिन्न प्रकार के अधिकारियों, कर्मचारियों और निरीक्षकों की आवश्यकता पैदा की। अर्थशास्त्र में अनेक विभागों, अध्यक्षों और प्रशासनिक पदों का उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि राज्य का संगठन केवल वर्णीय भूमिकाओं के आधार पर नहीं था। फिर भी वर्णीय वैचारिकी प्रशासनिक सोच पर प्रभाव डाल सकती थी। ब्राह्मणीय ज्ञान-परंपरा से जुड़े व्यक्तियों का सलाहकार, शिक्षक या पुरोहित के रूप में महत्व था। क्षत्रिय आदर्श राजनीतिक और सैन्य शक्ति से जुड़ा था। वैश्य वर्ग आर्थिक गतिविधियों से संबंधित था। शूद्र और अन्य श्रमजीवी समुदाय उत्पादन तथा सेवा की आधारभूत संरचना का हिस्सा थे। इस संदर्भ में वर्ण-व्यवस्था को 'प्रशासनिक नियुक्ति प्रणाली' मानना गलत होगा। मौर्य प्रशासन में योग्यता, कार्यक्षमता और राज्यहित का भी महत्त्व था। अर्थशास्त्र का व्यावहारिक चरित्र अनेक पदों को उनके कार्यों के आधार पर परिभाषित करता है। इसलिए वर्णीय आदर्श और प्रशासनिक वास्तविकता के बीच अंतर बनाए रखना आवश्यक है (कोसांबी, डी. डी. 1956)।

सामान्यतया सभी अन्य जातियों का स्थान ब्राह्मण-क्षत्रिय वर्णों से निम्न होने के फलस्वरूप इन उच्च वर्णों की कन्याएँ निम्न वर्णों के लिए अलभ्य थीं । सिगाल-जातक के अनुसार एक नापितपुत्रा किसी लिच्छवी-कन्या पर आसक्त हो गया । परंतु जब उसने उस कन्या को पत्नी रूप में प्राप्त करने की अभिलाषा व्यक्त की तो उसके पिता ने कहा 'निषि वस्तु को प्राप्त करने की आकांक्षा से कोई लाभ नहीं कहाँ वह सिहनीं-सम क्षत्रिय-दुहिता और कहाँ तुम श्रृंगाल सदृश नापित-पुत्रा । इस काल के समाज में लोगों के अन्तर्जातीय खान-पान संबंधी विचारों में हम एकरूपता नहीं पाते । समाज का एक वर्ग अन्तर्जातीय खान-पान मे थोड़ा प्रतिबंध लगाने के पक्ष मे था, तो दूसरा वर्ग विपक्ष मे । शाक्यवंशी महानाम ने कोशल-नरेश प्रसेनजित के दूतो को छलपूर्वक आश्वस्त किया कि उन्होने अपनी दासीपुत्राी वासभखत्तिया के साथ एक ही थाली मे भोजन किया, यद्यपि उन्होने यथार्थतः ऐसा नहीं किया था । उन्होंने तो ऐसा नाटक रचा जिससे दूतों को विश्वास हो गया कि वासभखतिया उनकी सहधर्मचारिणी-गर्भोद्भवा कन्या थी (ओलिवेल, पी. 1993)।

This is an Open Access article published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0)

वर्ण-व्यवस्था और दण्डनीति

राज्य की एक प्रमुख विशेषता दण्ड का प्रयोग है। अर्थशास्त्र में दण्ड को सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने का साधन माना गया है। अपराध, संपत्ति, विवाह, अनुबंध, चोरी, हिंसा और अन्य सामाजिक व्यवहारों के लिए दण्ड निर्धारित हैं। इस संदर्भ में सामाजिक स्थिति का प्रभाव दिखाई देता है। यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- चारों वर्णों के लोग आर्य जनता के अंग थे, पर समाज मे उनकी स्थिति एक समान नहीं थी । न्यायालयो द्वारा अपराधियों को दण्ड देते हुए या बाद के संबंध मे साक्षी लेते हुए वर्ण को दृष्टि मे रखा जाता था । यदि निचले वर्ण का कोई व्यक्ति उच्च वर्ण के व्यक्ति के प्रति 'वाक्पारुष्य' का प्रयोग करे, तो उसे अधिक दण्ड मिलता था, उस दण्ड की तुलना मे जो कि उच्च वर्ण के व्यक्ति द्वारा नीचे वर्ण के व्यक्ति के प्रति वाक्पारुष्य को प्रयुक्त करने पर देय था । यदि क्षत्रिय ब्राह्मण को कुवचन कहे, तो उसके लिये तीन पण जुरमाने की व्यवस्था थी । पर यदि यही अपराध वैश्य द्वारा किया जाए, तो उसे छः पण दण्ड दिया जाता था । शूद्र द्वारा यही अपराध किये जाने पर नौ पण जुरमाना किया जाता था । इसके विपरीत यदि ब्राह्मण किसी शूद्र को कुवचन कहे, तो उसे केवल दो पण जुरमाना देना होता था । वैश्य को ब्राह्मण द्वारा कुवचन कहने पर चार पण और क्षत्रिय को कुवचन कहने पर छः पण जुरमाने की व्यवस्था थी । प्राचीन भारतीय विधि-साहित्य में दण्ड की मात्रा कई बार व्यक्ति की सामाजिक स्थिति के अनुसार अलग होती थी। यह समान नागरिकता की आधुनिक अवधारणा से भिन्न था। वर्णीय स्थिति कानून की व्याख्या और सामाजिक प्रतिष्ठा को प्रभावित कर सकती थी। विवाह और पारिवारिक कानूनों में भी सामाजिक श्रेणियों का महत्व दिखाई देता है। अर्थशास्त्र के तीसरे ग्रंथ में विवाह, स्त्रीधन, पारिवारिक अधिकार तथा संपत्ति से संबंधित विस्तृत प्रावधान हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वर्ण-व्यवस्था केवल धार्मिक विचार नहीं थी; वह सामाजिक कानून की अवधारणाओं के साथ भी जुड़ी थी। फिर भी अर्थशास्त्र का विधिक संसार इतना व्यावहारिक है कि उसमें संपत्ति, अनुबंध, व्यापार और प्रशासनिक हितों को भी प्रमुखता मिलती है। इसलिए मौर्यकालीन कानून को केवल वर्णधर्म का विस्तार समझना उचित नहीं होगा (शर्मा, आर. एस. 1983)।

कृषि, उत्पादन, शिल्प, व्यापार और शूद्र की स्थिति

उस समय में भी तन्तुवाय, रजक आदि पृथक् जातियों का रूप प्राप्त कर चुके थे, और उनमें ऐसे परम्परागत नियमों का भी विकास हो गया था, जिन्हें राज्यसंस्था द्वारा भी स्वीकार किया जाता था । कौटल्य ने इन जातियो को शूद्र वर्ण के अंतर्गत किया है । पर यह ध्यान में रखना चाहिये, कि मौर्य युग मे शूद्रों की सामाजिक स्थिति हीन नहीं मानी जाती थी । उन्हें भी 'आर्य' समझा जाता था, और वे उन स्वेच्छो, चाण्डालो, श्वपचो आदि से भिन्न स्थिति रखते थे, जो कि आर्य जनता के अंग नहीं थे । मनुस्मृति आदि स्मृति में शूद्रों का केवल यह कार्य माना गया है कि वे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों की सेवा मे निरत रहे और वह सेवा वे 'असूया' के बिना किया करें । पर कौटल्य ने कृषि, पशुपालन, वाणिज्य और शिल्प को भी शूद्र वर्ण के 'स्वधर्म' के अंतर्गत किया है, जिससे इस बात मे कोई संदेह नहीं रह जाता कि मौर्य युग में विविध प्रकार के शिल्पियों और कारीगरों के साथ-साथ कृषकों, कुशीलवों और पशुपालको को भी शूद्र माना जाता था । तन्तुवाय, रजक, लोहकारू, कर्मार आदि शिल्पियो ने इस काल मे पृथक् जातियो का रूप प्राप्त कर लिया था, और इन सबको शूद्र वर्ण के अंतर्गत माना जात था, यद्यपि समाज में इनकी स्थिति सम्मानित थी, और इनके लोग ब्राह्मण आदि उच्च वर्णो की सेवा मे ही निरत न रहकर स्वतंत्रारूप से अपने-अपने कारोबार किया करते थे (सिंह, उपिंदर 2008)।

मौर्य साम्राज्य की आर्थिक शक्ति का प्रमुख आधार कृषि थी। विशाल क्षेत्र में राज्य की आय भूमि-उत्पादन, कर, व्यापार और विभिन्न आर्थिक गतिविधियों से आती थी। कृषि के विस्तार के लिए भूमि, श्रम, सिंचाई और प्रशासनिक नियंत्रण आवश्यक थे। वर्ण-व्यवस्था में वैश्य को कृषि, पशुपालन और व्यापार से जोड़ा गया था। किंतु वास्तविक कृषि-व्यवस्था इससे कहीं अधिक जटिल थी। किसान, खेतिहर मजदूर, दास, शूद्र, स्थानीय समुदाय और अन्य ग्रामीण समूह उत्पादन में भाग लेते थे। इसीलिए 'वैश्य = किसान' जैसी सरल समानता ऐतिहासिक रूप से पर्याप्त नहीं है। अर्थशास्त्र में कृषि उत्पादन और राज्य के नियंत्रण का विस्तृत उल्लेख मिलता है। इससे राज्य और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के घनिष्ठ संबंध का पता चलता है। राज्य भूमि से राजस्व प्राप्त करता था, कृषि उत्पादन को प्रोत्साहित या नियंत्रित कर सकता था और सिंचाई जैसी व्यवस्थाओं में हस्तक्षेप कर सकता था। यहाँ वर्ण-व्यवस्था की भूमिका मुख्यतः वैचारिक थी। उत्पादक कार्यों को सामाजिक रूप से वैध और निर्धारित करना आर्थिक व्यवस्था को नैतिक आधार देता था। इससे राज्य के लिए कृषि और व्यापार जैसी गतिविधियाँ केवल आर्थिक क्रियाएँ नहीं रहतीं, बल्कि सामाजिक कर्तव्य का रूप भी ग्रहण कर सकती थीं।

मौर्यकालीन आर्थिक विकास में शिल्प और व्यापार की महत्वपूर्ण भूमिका थी। नगरीय केंद्रों के विकास, लंबी दूरी के व्यापार और उत्पादन के विस्तार ने अनेक पेशागत समुदायों को जन्म दिया। अर्थशास्त्र में शिल्पियों, व्यापारियों और विभिन्न पेशों से संबंधित राज्य-नियमन का विवरण मिलता है। विशेष रूप से शूद्र के संदर्भ में अर्थशास्त्र का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसमें सेवा के साथ कृषि, पशुपालन, व्यापार और शिल्प को भी शूद्र की आर्थिक गतिविधियों में शामिल किया गया है। यह तथ्य उस धारणा को जटिल बनाता है जिसमें शूद्र को केवल 'सेवक' समझा जाता है। वास्तविक अर्थव्यवस्था में निम्न सामाजिक स्थिति वाला व्यक्ति भी उत्पादन के अनेक क्षेत्रों में सक्रिय हो सकता था। इस प्रकार वर्णीय आदर्श और पेशागत वास्तविकता में अंतर था। यह अंतर मौर्य राज्य की प्रकृति को समझने में महत्वपूर्ण है। राज्य को उत्पादन चाहिए था; इसलिए वह आर्थिक रूप से उपयोगी गतिविधियों को केवल सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर सीमित नहीं कर सकता था। राजकीय अर्थव्यवस्था में शिल्पी, व्यापारी, कृषक और श्रमिक सभी आवश्यक थे।

सैन्य संगठन और क्षत्रिय आदर्श, ब्राह्मण और राजसत्ता

मौर्य साम्राज्य की शक्ति का एक प्रमुख आधार उसकी विशाल सेना थी। चन्द्रगुप्त और अशोक के समय साम्राज्य के विस्तार और सुरक्षा के लिए स्थायी तथा संगठित सैन्य व्यवस्था आवश्यक थी। भारतीय वर्ण-व्यवस्था में क्षत्रिय का प्रमुख कर्तव्य शस्त्र धारण करना और प्रजा की रक्षा करना माना गया। अर्थशास्त्र में क्षत्रिय के

This is an Open Access article published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0)

कर्तव्यों में सैन्य व्यवसाय और प्रजा की रक्षा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। लेकिन मेगस्थनीज का विवरण एक अलग चित्र प्रस्तुत करता है। उसके अनुसार सैनिक एक विशिष्ट सामाजिक समूह के रूप में दिखाई देते हैं। यह भारतीय चार-वर्ण मॉडल से अलग कार्यात्मक वर्गीकरण है। इससे यह संकेत मिलता है कि वास्तविक मौर्य सैन्य संगठन को केवल क्षत्रिय जातीय समूह तक सीमित नहीं किया जा सकता। राज्य की सैन्य आवश्यकताएँ सामाजिक आदर्श से अधिक व्यापक थीं। साम्राज्य को बड़ी संख्या में सैनिकों की आवश्यकता थी और विभिन्न समुदायों से सैनिक भर्ती किए जा सकते थे। इसलिए क्षत्रिय आदर्श ने सैन्य सेवा को वैचारिक प्रतिष्ठा दी, लेकिन सैन्य संगठन वास्तविकता में अधिक विस्तृत था। मौर्यकालीन राज्य में ब्राह्मणों की स्थिति का प्रश्न विशेष रूप से विवादास्पद है। कभी-कभी मौर्य शासन को बौद्ध प्रभाव और ब्राह्मणीय परंपरा के विरोध के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, विशेषकर अशोक के संदर्भ में। परंतु स्रोतों का सावधानीपूर्वक अध्ययन ऐसी सरल द्वैधता का समर्थन नहीं करता। अशोक के अभिलेखों में 'ब्राह्मण और श्रमण' दोनों का सम्मान करने की बात मिलती है। इससे यह स्पष्ट है कि अशोक ने ब्राह्मणीय समुदाय को राज्य के बाहर या विरोधी समूह के रूप में नहीं देखा। उसका धम्म धार्मिक सह-अस्तित्व और नैतिक आचरण को बढ़ावा देता था। अशोक के धम्म की व्याख्या करते हुए आधुनिक अध्ययनों में भी धार्मिक सहिष्णुता और सामाजिक नैतिकता को महत्वपूर्ण माना गया है। ब्राह्मणों की भूमिका राजनीतिक वैधता, शिक्षा और धार्मिक ज्ञान के कारण महत्त्वपूर्ण बनी रही। किंतु मौर्य राज्य का चरित्र इतना व्यापक था कि उसकी वैधता केवल ब्राह्मणीय धर्म पर निर्भर नहीं हो सकती थी। बौद्ध और जैन जैसी श्रमण परंपराओं की सामाजिक उपस्थिति भी राज्य की वैचारिक संरचना का हिस्सा बनी (ट्रॉटमैन, थॉमस आर. 1971)।

मेगस्थनीज और सामाजिक संरचना

मेगस्थनीज का विवरण मौर्यकालीन समाज की प्रकृति को समझने में विशेष महत्व रखता है। उसके अनुसार भारतीय समाज को सात समूहों में विभाजित किया गया था—दार्शनिक, कृषक, पशुपालक एवं शिकारी, शिल्पी एवं व्यापारी, सैनिक, निरीक्षक तथा परामर्शदाता/अधिकारी। यह वर्गीकरण चार वर्णों से स्पष्ट रूप से अलग है। इसलिए इसे भारतीय वर्ण-व्यवस्था का सीधा प्रतिरूप नहीं माना जा सकता। बल्कि यह संभव है कि मेगस्थनीज ने भारतीय समाज को अपने यूनानी राजनीतिक-सामाजिक दृष्टिकोण के अनुरूप पेशागत समूहों में समझने का प्रयास किया हो। उसका विवरण यह संकेत करता है कि मौर्यकालीन समाज में कार्यात्मक विभाजन अत्यंत महत्वपूर्ण था। कृषक राज्य के लिए उत्पादन का आधार थे; सैनिक साम्राज्य की रक्षा करते थे; शिल्पी और व्यापारी आर्थिक गतिविधियों को संचालित करते थे; अधिकारी राज्य के प्रशासन को चलाते थे। यहाँ एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है—मौर्य राज्य की वास्तविक सामाजिक संरचना वर्ण-आदर्श से अधिक जटिल थी। वर्ण-व्यवस्था राज्य की वैचारिक भाषा का एक भाग थी, जबकि प्रशासनिक और आर्थिक वास्तविकता पेशागत और क्षेत्रीय समूहों की बहुलता पर आधारित थी।

अशोक और वर्ण-व्यवस्था, धम्म और वर्णधर्म का अंतर्संबंध

अशोक की धर्मलिपियों मे यद्यपि शूद्रों का कहीं उल्लेख नहीं है, पर 'दास' और 'मृतक' से संभवतः समाज के उसी वर्ग को सूचित किया गया है, जिसके लिये कौटलीय अर्थशास्त्रा में 'शूद्र' शब्द प्रयुक्त हुआ है । धर्मलिपियों में अनेक बार दास-मृतको का उल्लेख किया गया है, और अशोक ने यह आदेश दिया है कि उनके प्रति सम्यक् व्यवहार किया जाए । कौटलीय अर्थशास्त्रा मे दासों, कर्मकारो और मृतको से संबंध रखने वाले नियमों का विशद रूप से निरुपण किया गया है । ये नियम ऐसे हे, जिन्हे समुचित कहा जा सकता है । अशोक इस बात के लिये उत्सुक था कि स्वामी लोग जहाँ दासो, कर्मकारों और मृतको के संबंध मे परम्परागत व राजकीय नियमो का अविकल रूप से पालन करे , वहाँ साथ ही उनके अति सहानुभूति और अनुकम्पा का भी भाव रखे । अशोक के शासनकाल में राज्य की वैचारिक भाषा में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देता है। कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने 'धम्म' को राजकीय नैतिकता के केंद्र में रखा। उसके अभिलेखों में धम्म के अंतर्गत माता-पिता की सेवा, वृद्धों का सम्मान, ब्राह्मणों और श्रमणों के प्रति आदर, दासों और सेवकों के साथ उचित व्यवहार, प्राणियों के प्रति दया और संयम जैसे तत्व शामिल हैं। यह धम्म वर्ण-व्यवस्था को समाप्त नहीं करता, किंतु राज्य की नैतिकता को केवल वर्णीय कर्तव्यों से व्यापक बना देता है। अशोक का धम्म सामाजिक आचरण के ऐसे मानकों पर बल देता है जो विभिन्न धार्मिक और सामाजिक समूहों के लिए लागू हो सकें। इस प्रकार अशोक की नीति को वर्ण-विरोधी क्रांति के रूप में देखना उतना ही अनुचित होगा जितना उसे केवल ब्राह्मणीय वर्णधर्म का विस्तार मानना। वह एक साम्राज्यवादी नैतिक परियोजना थी जिसका उद्देश्य विभिन्न समुदायों के बीच सह-अस्तित्व और राजकीय स्थिरता को बढ़ाना था (थापर, रोमिला 1997)। अशोक के लिए साम्राज्य केवल दण्ड और कर से नहीं चल सकता था। विशाल भूभाग में विविध समुदायों को राजनीतिक रूप से जोड़ने के लिए एक साझा नैतिक भाषा आवश्यक थी। धम्म ने यह भूमिका निभाई। धम्म और वर्णधर्म में कुछ समानताएँ और कुछ महत्वपूर्ण अंतर थे। दोनों में नैतिक आचरण और कर्तव्य का महत्व था। किंतु वर्णधर्म मुख्यतः सामाजिक भूमिका और श्रेणीगत कर्तव्यों पर आधारित था, जबकि अशोक का धम्म व्यापक नैतिक आचरण पर केंद्रित था। अशोक के लिए ब्राह्मण और श्रमण दोनों सम्मान के पात्र थे। इस प्रकार धम्म किसी एक संप्रदाय को राज्य की एकमात्र वैचारिक पहचान नहीं बनाता। यही कारण है कि अशोक की नीति को बहुधार्मिक साम्राज्य के लिए एक समावेशी राजनीतिक नैतिकता के रूप में समझा जा सकता है। यहाँ राज्य की परिकल्पना में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देता है। पूर्ववर्ती ब्राह्मणीय राजनीतिक विचार में राजा का दायित्व सामाजिक व्यवस्था की रक्षा था; अशोक के यहाँ राजा प्रजा के नैतिक कल्याण और कल्याणकारी प्रशासन का भी दायित्व ग्रहण करता है।

वर्ण-व्यवस्था, राजकीय अर्थव्यवस्था, सामाजिक नियंत्रण और वर्ण-व्यवस्था की सीमाएँ

राज्य और अर्थव्यवस्था के संबंध को मौर्यकालीन इतिहास में विशेष महत्व प्राप्त है। रोमिला थापर के अध्ययन के अनुसार मौर्यकाल में आर्थिक गतिविधियों के विस्तार ने सामाजिक संगठन को प्रभावित

This is an Open Access article published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0)

किया और कृषि, शिल्प तथा व्यापार के विकास ने साम्राज्य की सामाजिक-आर्थिक संरचना को नया रूप दिया। वर्ण-व्यवस्था इस आर्थिक संरचना को वैचारिक रूप से वर्गीकृत करती थी। कृषि और पशुपालन वैश्य धर्म से जुड़े थे; शिल्प और सेवा शूद्रों सहित विभिन्न समूहों से संबंधित थे; व्यापार को वैश्य भूमिका का प्रमुख अंग माना गया। राज्य के लिए इसका व्यावहारिक महत्व यह था कि उत्पादन और पेशागत गतिविधियों को सामाजिक वैधता प्राप्त होती थी। जब किसी पेशे को 'धर्म' या 'कर्तव्य' के रूप में देखा जाता है, तो आर्थिक भूमिका सामाजिक अनुशासन का हिस्सा बन जाती है। परंतु यह व्यवस्था स्थिर नहीं थी। आर्थिक परिवर्तन नए पेशों और नए समूहों को जन्म देते थे। शहरीकरण ने पेशागत विभाजन को बढ़ाया। राज्य को इसलिए शास्त्रीय चार-वर्ण मॉडल से अधिक व्यापक सामाजिक वास्तविकता के साथ काम करना पड़ता था। राज्य की स्थिरता के लिए सामाजिक नियंत्रण आवश्यक है। सामाजिक नियंत्रण केवल पुलिस और दण्ड से नहीं बल्कि मान्यताओं, परंपराओं और नैतिक नियमों से भी स्थापित होता है। वर्ण-व्यवस्था ने प्रत्येक समूह के लिए अपेक्षित आचरण और भूमिका का एक मानक प्रस्तुत किया। यदि ब्राह्मण से अध्ययन और धार्मिक कार्य, क्षत्रिय से रक्षा और शासन, वैश्य से उत्पादन और व्यापार तथा शूद्र से सेवा और उत्पादक श्रम की अपेक्षा की जाती है, तो सामाजिक भूमिका पहले से निर्धारित हो जाती है। इससे राज्य को समाज के विभिन्न वर्गों से अपेक्षित कार्यों की एक वैचारिक रूपरेखा मिलती है। हालाँकि इस व्यवस्था का दूसरा पक्ष सामाजिक असमानता था। ऊँच-नीच की श्रेणियाँ सामाजिक संसाधनों और प्रतिष्ठा के असमान वितरण को वैधता दे सकती थीं। धर्मशास्त्रीय साहित्य में सामाजिक श्रेणियों के आधार पर अधिकारों और कर्तव्यों के अंतर को संस्थागत रूप मिलता है। आधुनिक अध्ययन इस बात पर बल देते हैं कि वर्ण-व्यवस्था में तीन 'विशेषाधिकार प्राप्त' वर्णों और एक अधीनस्थ वर्ण की अवधारणा मौजूद थी। इसलिए वर्ण-व्यवस्था ने राज्य को सामाजिक स्थिरता प्रदान की, लेकिन उसी प्रक्रिया में सामाजिक असमानता को भी संरचनात्मक वैधता मिल सकती थी (थापर, रोमिला 1997)।

यद्यपि मेगास्थनीज के विवरण तथा अशोक के अभिलेखों में नियुक्ति के नियमो के बारे मे कुछ नहीं कहा गया है, किन्तु कौटिल्य ने अमात्य कहे जानेवाले उच्चाधिकारियो के संवर्ग ;काडरद्ध के लिए कुछ योग्यताओ का विधान अवश्य किया है । उसका विशेष जोर आभिजात्य पर है । इसी संवर्ग मे से समाहर्ता, सन्निधाता और धर्मस्थ की नियुक्ति करने की व्यवस्था की गई है । किन्तु इस संवर्ग के सदस्य भी कुछ परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने पर ही इन पदा पर नियुक्त किए जा सकते थे । इस प्रकर यद्यपि किसी प्रकार की प्रतियोगिता परीक्षा की व्यवस्था नहीं की गई है, तथापि, नियुक्ति के नियमो से किसी न किसी प्रकार के नौकरशाही संगठन का संकेत अवश्य मिलता है । यह नौकरशाही पूरी तरह से श्रेणी थी, इसका आभास विभिन्न श्रेणियों के अधिकारियों के वेतनमानो से मिलता है । मंत्राी, पुरोहित, सेनापति और युवराज जैसे उच्चतम पदाधिकारियों का वेतन निर्धारित करने में बड़ी उदारता बरती गई है । कुछ अधिकारियो को तो 48,000 पण तक वेतन देने की व्यवस्था है, जबकि एक पत्रा 3, 4 तोला चांदी होती थी । इसके विपरीत, भृत्यभरणीयम्' प्रकरण मे दी गई वेतनो की समेकित सूची मे निम्नतम कर्मचारियो को 60 पण देने की सिफारिश की गई है ।

मौर्यकालीन राज्य के अध्ययन में वर्ण-व्यवस्था की भूमिका को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करना भी उचित नहीं है। इसके कई कारण हैं। पहला, मौर्य साम्राज्य भौगोलिक रूप से अत्यंत विविध था। उत्तर-पश्चिम से लेकर दक्कन और पूर्वी भारत तक फैले क्षेत्रों में विभिन्न भाषायी, जातीय, जनजातीय और धार्मिक समूह मौजूद थे। दूसरा, आर्थिक जीवन में अनेक पेशागत समूह सक्रिय थे जिन्हें चार वर्णों में सीधे वर्गीकृत करना संभव नहीं था। तीसरा, मेगस्थनीज का सात-समूह वाला वर्गीकरण बताता है कि पेशागत पहचान सामाजिक संगठन की महत्वपूर्ण इकाई थी। चौथा, अशोक का धम्म वर्णीय भेद से अधिक व्यापक नैतिक समुदाय की कल्पना करता है। पाँचवाँ, अर्थशास्त्र स्वयं अत्यधिक व्यावहारिक है। राज्य का लक्ष्य केवल धर्म की रक्षा नहीं बल्कि अर्थ, सुरक्षा और राजनीतिक स्थिरता है। इसलिए वर्ण-व्यवस्था को मौर्य राज्य की 'एकमात्र आधारभूत संरचना' कहना स्रोतों की बहुलता के विरुद्ध होगा।

राज्य, धर्म, साम्राज्य की एकता और सामाजिक व्यवस्था

मौर्यकालीन राज्य को समझने के लिए 'धर्म' की अवधारणा विशेष महत्व रखती है। धर्म का अर्थ केवल धार्मिक विश्वास नहीं था; इसमें सामाजिक कर्तव्य, नैतिक आचरण और व्यवस्था की अवधारणा भी शामिल थी। ब्राह्मणीय परंपरा में वर्णधर्म सामाजिक धर्म का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था। राजा का दायित्व सामाजिक व्यवस्था और धर्म की रक्षा करना माना जाता था। अर्थशास्त्र में राज्य की शक्ति और सामाजिक व्यवस्था के बीच संबंध इसी व्यापक परंपरा में समझा जा सकता है। अशोक ने 'धम्म' के माध्यम से इस अवधारणा को एक नया राजकीय रूप दिया। उसका धम्म सामाजिक नैतिकता और राजकीय प्रशासन के बीच पुल का कार्य करता है। इस अर्थ में अशोक ने धार्मिक परंपराओं को नष्ट नहीं किया बल्कि साम्राज्य की बहुलता के अनुरूप नैतिक शासन का एक व्यापक ढाँचा विकसित किया। मौर्य साम्राज्य जैसे विशाल राज्य के सामने एक प्रमुख समस्या राजनीतिक एकता की थी। केवल सैन्य शक्ति से इतनी बड़ी और विविध जनसंख्या को लंबे समय तक नियंत्रित करना कठिन था। सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं का उपयोग राजनीतिक एकता के लिए किया जा सकता था। वर्ण-व्यवस्था ने समाज को एक पदानुक्रमित नैतिक व्यवस्था के रूप में देखने का तरीका दिया। राजा उस व्यवस्था का संरक्षक था। लेकिन अशोक के समय इस एकता की समस्या और अधिक जटिल हो गई। विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक समुदायों को एक साझा राजनीतिक नैतिकता की आवश्यकता थी। धम्म इस आवश्यकता का उत्तर था।

वर्ण-व्यवस्था और मौर्य राज्य: द्वंद्वात्मक संबंध

वर्ण-व्यवस्था और राज्य के बीच संबंध एकतरफा नहीं था। राज्य ने वर्णीय सामाजिक व्यवस्था को संरक्षण दिया, लेकिन राज्य की आर्थिक और राजनीतिक आवश्यकताओं ने वर्ण-व्यवस्था को भी प्रभावित किया। उदाहरण के लिए, राज्य को सैनिकों, अधिकारियों, व्यापारियों, कृषकों और शिल्पियों की आवश्यकता थी। वास्तविक आर्थिक जीवन में पेशागत गतिशीलता और सामाजिक विविधता

This is an Open Access article published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0)

को पूरी तरह नियंत्रित करना संभव नहीं था। इस कारण शास्त्रीय वर्ण-आदर्श को वास्तविक प्रशासनिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप लचीला होना पड़ा। इसी प्रकार साम्राज्य के विस्तार ने नए समुदायों को राजकीय संरचना में शामिल किया। उन्हें चार वर्णों की परंपरागत श्रेणियों में शामिल करना या उनसे संबंध स्थापित करना एक क्रमिक प्रक्रिया रही होगी। इसलिए राज्य और वर्ण-व्यवस्था का संबंध 'आदेश और पालन' का संबंध न होकर परस्पर अनुकूलन का संबंध था।

निष्कर्ष

मौर्यकालीन राज्य भारतीय इतिहास में एक ऐसी राजनीतिक संरचना का प्रतिनिधित्व करता है जिसने विशाल भूभाग, विविध समुदायों, कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था, विकसित व्यापार, शिल्प, सेना और प्रशासन को एक साम्राज्यवादी ढाँचे में संगठित किया। इस राज्य की परिकल्पना केवल सैन्य शक्ति या प्रशासनिक केंद्रीकरण से नहीं बनी थी। इसके पीछे सामाजिक और वैचारिक अवधारणाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। वर्ण-व्यवस्था इस वैचारिक संरचना का एक प्रमुख तत्व थी। उसने समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में वर्गीकृत करके अलग-अलग कर्तव्यों और भूमिकाओं की कल्पना प्रस्तुत की। अर्थशास्त्र में इन भूमिकाओं का वर्णन यह दिखाता है कि सामाजिक व्यवस्था और राज्य व्यवस्था को अलग-अलग नहीं देखा जाता था। ब्राह्मण ज्ञान और धार्मिक वैधता से, क्षत्रिय शासन और सुरक्षा से, वैश्य उत्पादन और व्यापार से तथा शूद्र सेवा, कृषि, पशुपालन, व्यापार और शिल्प से जुड़े थे। इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था ने राज्य को समाज की कार्यात्मक संरचना समझने का एक वैचारिक ढाँचा प्रदान किया। फिर भी मौर्यकालीन सामाजिक वास्तविकता चार वर्णों से कहीं अधिक जटिल थी। मेगस्थनीज का सात समूहों वाला विवरण यह बताता है कि पेशागत विभाजन सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण वास्तविकता था। किसान, सैनिक, व्यापारी, शिल्पी और अधिकारी जैसे समूहों की पहचान केवल उनके वर्ण से नहीं की जा सकती। इससे स्पष्ट होता है कि वर्ण-व्यवस्था एक आदर्शात्मक ढाँचा थी, जबकि वास्तविक सामाजिक संगठन अनेक आर्थिक और क्षेत्रीय कारकों से निर्मित था।

मौर्य राज्य की वैधता के स्तर पर भी वर्ण-व्यवस्था का प्रभाव दिखाई देता है। राजधर्म और क्षत्रिय धर्म के बीच संबंध ने राजा की भूमिका को नैतिक और सामाजिक आधार दिया। राज्य सामाजिक व्यवस्था का रक्षक था और दण्ड के माध्यम से व्यवस्था बनाए रखता था। इस प्रक्रिया में वर्णीय पदानुक्रम को संरक्षण मिल सकता था। आर्थिक स्तर पर वर्ण-व्यवस्था ने उत्पादन की सामाजिक वैधता को प्रभावित किया। कृषि, पशुपालन और व्यापार को वैश्य धर्म से जोड़ना तथा शूद्रों को कृषि, शिल्प और अन्य उत्पादक कार्यों में सम्मिलित करना यह दिखाता है कि सामाजिक और आर्थिक भूमिकाएँ परस्पर संबद्ध थीं। लेकिन आर्थिक विस्तार ने स्वयं इस आदर्श को चुनौती दी। शहरीकरण और व्यापारिक विकास ने अनेक नए पेशागत समूहों को जन्म दिया। अशोक के शासनकाल में इस संबंध में एक महत्वपूर्ण वैचारिक विस्तार हुआ। धम्म ने राज्य की नैतिकता को वर्णीय कर्तव्यों से आगे बढ़ाकर एक व्यापक नैतिक समुदाय की कल्पना की। ब्राह्मण और श्रमण दोनों के सम्मान, प्राणियों के प्रति दया, माता-पिता की सेवा, सेवकों के प्रति उचित व्यवहार और धार्मिक सहिष्णुता पर बल देकर अशोक ने एक ऐसी राजनीतिक नैतिकता विकसित की जो साम्राज्य की विविधता के लिए अधिक उपयुक्त थी। अशोक के अभिलेखों से स्पष्ट है कि उसका धम्म किसी एक संप्रदाय की राजनीतिक स्थापना के बजाय नैतिक शासन और सामाजिक सद्भाव की परियोजना था। इस अध्ययन से तीन व्यापक निष्कर्ष निकलते हैं। पहला, वर्ण-व्यवस्था ने मौर्य राज्य को सामाजिक भूमिकाओं और कर्तव्यों की वैचारिक भाषा प्रदान की। दूसरा, इसने राजसत्ता, सामाजिक व्यवस्था और आर्थिक उत्पादन के बीच संबंध को वैधता देने में योगदान किया। तीसरा, मौर्य साम्राज्य की बहुलतापूर्ण वास्तविकता ने वर्ण-व्यवस्था को पूर्ण प्रशासनिक ढाँचे के रूप में कार्य करने से सीमित किया।

विशाल मौर्य साम्राज्य और मौर्य प्रशासन की आधारशिला सामाजिक-आर्थिक-संस्थागत मौर्यकालीन भौतिक संसाधनो की प्रचुरता ने राज्य व्यवस्था को उन्नत करने मे महत्वपूर्ण योगदान किया । संसाधनो को व्यवस्थित करना और उसे नियंत्रित करना, राज्य व्यवस्था का एक आवश्यक अंग बन गया । दूसरी ओर कौटिल्य का अथवा मौर्य इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ 'अर्थशास्त्रा' ने एक राजनैतिक क्रांति ही ला दी । राज्य व्यवस्था पर इतनी महत्वपूर्ण कृति आज तक उपलब्ध नहीं हो सकी है । वर्ण से वंश तक का सफर, फिर वंश से राज्य की दिशा में संचरण कई धातलों पर परिवर्तन को रेखांकित करता है । भारत के इतिहास के आदिकाल में राज्य के निर्माण के विश्लेषण को परिवर्तन की एक प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है जिसमें सामाजिक रूप के स्थन पर राज्य का प्रभुत्व स्थापित हुआ । जिन्हें मोटे तौर पर वंश प्रणालियाँ कहा जा सकता है, किन्तु प्रभुत्व का स्वरूप किसी वर्तमान माडल मे नहीं दिखता ''राज्य की परिकल्पना मे वर्णव्यवस्था का योगदान ;वैदिक युग से मौर्य युग तक और इसकी गत्यात्मकता के लिए नये पुनर्निमाण की आवश्यकता होती है । एक सामाजिक रचना से दूसरी सामाजिक रचना मे परिवर्तन भी ऐसा नहीं होता कि पूरी तरह से उसका रूप ही बदल जाए, क्योंकि परिवर्तन की इस प्रक्रिया मे पहली रचना का बहुत कुछ बचा रहता है और बहुत कुछ अतिव्यापी होता है । कुल मिलाकर राज्य के निर्माण मे वर्ण-वंश-समाज और शासक अपने महत्व को निर्धारित करते रहे हैं ।

संदर्भ सूची -

कौटिल्य। (1960–1965)। कौटिलीय अर्थशास्त्र (आर. पी. कांगले, सं./अनु., खंड 1–3)। मुंबई विश्वविद्यालय।

अशोक। (ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी)। अशोक के शिलालेख एवं स्तंभलेख। विभिन्न अभिलेखीय संकलनों में उपलब्ध।

धम्मिका, एस. (1993)। राजा अशोक के अभिलेख: एक अंग्रेज़ी रूपांतरण। कैंडी: बौद्ध प्रकाशन सोसायटी।

This is an Open Access article published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0)

मेगस्थनीज। (प्राचीन काल)। इंडिका। मेगस्थनीज के मूल ग्रंथ के उपलब्ध अंश स्ट्रैबो, एरियन तथा अन्य यूनानी-रोमन लेखकों के उद्धरणों में संरक्षित हैं।

अक्तोर, एम. (2017)। सामाजिक वर्ग: वर्ण। पी. ओलिवेल एवं डी. आर. डेविस (सं.), हिंदू धर्म का ऑक्सफोर्ड इतिहास: हिंदू विधि—धर्मशास्त्र का एक नया इतिहास में। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

बाशम, ए. एल. (1954)। भारत वह अद्‌भुत देश था: मुस्लिम आगमन से पूर्व भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास एवं संस्कृति का अध्ययन। लंदन: सिड्जविक एंड जैक्सन।

झा, डी. एन. (1998)। प्राचीन भारत: एक ऐतिहासिक रूपरेखा। नई दिल्ली: मनोहर।

कांगले, आर. पी. (1960–1965)। कौटिलीय अर्थशास्त्र का अध्ययन (खंड 1–3)। मुंबई: मुंबई विश्वविद्यालय।

ओलिवेल, पी. (1993)। आश्रम व्यवस्था: एक धार्मिक संस्था का इतिहास और व्याख्याशास्त्र। ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

शर्मा, आर. एस. (1983)। प्राचीन भारत में भौतिक संस्कृति और सामाजिक संरचनाएँ। नई दिल्ली: मैकमिलन।

सिंह, उपिंदर। (2008)। प्राचीन एवं आरंभिक मध्यकालीन भारत का इतिहास: पाषाण युग से 12वीं शताब्दी तक। नई दिल्ली: पियर्सन।

थापर, रोमिला। (1997)। अशोक और मौर्यों का पतन (तीसरा संस्करण)। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

ट्रॉटमैन, थॉमस आर. (1971)। कौटिल्य और अर्थशास्त्र: भारत के बौद्धिक इतिहास पर एक निबंध। लीडेन: ब्रिल।

थापर, रोमिला। (1997)। अशोक और मौर्यों का पतन (Aśoka and the Decline of the Mauryas, 3rd ed.)। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

This is an Open Access article published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0)